Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
Volume-14, Issue-2, September-2020
www.researchguru.net

सांस्कृतिक विकास में साहित्य की भूमिका

डॉ. तेजनारायण ओझा
सीनियर फैकल्टी, महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

सार:
साहित्य और संस्कृति का संबंध अन्योन्याश्रित है। साहित्य सांस्कृतिक विकास में अपनी सहयोगी भूमिका निभाता है। किसी भी राष्ट्र की संस्कृति अमूर्त होकर भी इतनी प्रभावी होती है कि उसमें रहने वाले लोगों की चेतना और संवेदना का विकास इतना शक्ति संपन्न होता है कि जनता की पहचान को सुनिश्चित करने लगता है। यह संस्कृति एक व्यापक और जीवंत प्रक्रिया है जिसमें राष्ट्र, समाज और व्यक्ति आभ्यांतरिक रूप से विकसित होता है। इसके साथ यह भी तय है कि किसी भी राष्ट्र का सांस्कृतिक विकास अल्पकालिक नहीं एक सुदीर्घ प्रक्रिया है। किसी भी संस्कृति के विकास में अनेक घटक कार्य करते हैं। भाषा और साहित्य भी ऐसे ही संस्कृति के विकास के उपांग है। अतः जैसे जैसे भाषा परिवर्तित होगी वह सांस्कृतिक परिवर्तन की सूचना देगी। भारतीय साहित्य की एक लंबी परंपरा है जो समय-समय पर भिन्न-भिन्न भाषिक उपादानों को अपना माध्यम बनाकर अपनी यात्रा को प्रवाहमान बनाया है। वैदिक साहित्य ने अग्नि संस्कृति को ना केवल प्रतिष्ठित ही किया वरन आज तक उसकी अक्षुण्ण परंपरा को बनाए रखा है। ठीक इसी प्रकार लौकिक संस्कृत के दो बड़े महाकाव्यों रामायण और महाभारत को देखा जा सकता है। परवर्ती बौद्ध और जैन साहित्य ने भी अपने समय की संस्कृति को दुख और अज्ञान से मुक्त करके देखने का प्रयास किया। भक्तिकाल में भक्ति आंदोलन के माध्यम से भारतीय संस्कृति में धर्म, न्याय, विवेक, भक्ति और सामाजिक समरसता को विकसित करने का कार्य किया। इस समय के संतकवि हों या भक्त कवि, सबने अपने-अपने तरीके से एक आदर्श संस्कृति और समाज को यूटोपिया के माध्यम से विन्यसित किया। भारतेंदुयुगीन साहित्य में आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से नई संवेदना के साथ नवजागरण की संस्कृति को विकसित किया गया। जयशंकर प्रसाद का समूचा रचना संसार सांस्कृतिक पुन:जागरण का संसार है। इस प्रकार साहित्य ने प्रत्येक समय की संस्कृति को विकसित करने में अपने महत्वपूर्ण भूमिका को स्थापित किया है।

की-वर्ड्स *:*
वैदिक संस्कृति, आग्नेय संस्कृति, सम्यक ज्ञान, बौद्ध दुखवाद, जैन धर्म के चार व्रत, भक्ति आंदोलन, यूटोपिया, सांस्कृतिक पुन:जागरण

परिचय

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अतः वह निरंतर अपने समाज और उससे जुड़ी संस्थाओं के विकास का प्रत्येक स्तर पर प्रयास करता रहता है। सामाजिक विकास के अनेकानेक आयाम होते हैं। कुछ आयाम तो वे हैं जो दिखाई नहीं देते बल्कि परंपरा दर परंपरा निर्वहित होते रहते हैं। लेकिन विकास की कुछ स्थितियां ऐसी होती हैं जो भौतिक रूप में दिखाई देती हैं। इन्हीं विकास की दशाओं को क्रमशः संस्कृति और सभ्यता के नाम से जाना जाता है।

मेरा शोध पत्र सांस्कृतिक विकास से ही जुड़ा हुआ है। इस पत्र में यह दिखाने का प्रयास होगा कि किस प्रकार साहित्य सांस्कृतिक विकास में अपनी सहयोगी भूमिका निभाता है। किसी भी राष्ट्र की संस्कृति अमूर्त होकर भी इतनी प्रभावी होती है कि उसमें रहने वाले लोगों की चेतना और संवेदना का विकास इतना शक्ति संपन्न होता है कि जनता की पहचान को सुनिश्चित करने लगता है। अतः हम कह सकते हैं कि संस्कृति ही वह आयाम है जिसमें व्यक्ति का अंतस उसकी आत्मा और ज्ञानात्मक संवेदना विकसित होती है। यह संस्कृति एक व्यापक और जीवंत प्रक्रिया है जिसमें राष्ट्र, समाज और व्यक्ति आभ्यांतरिक रूप से विकसित होता है। इसके साथ यह भी तय है कि किसी भी राष्ट्र का सांस्कृतिक विकास अल्पकालिक नहीं वरन एक सुदीर्घ प्रक्रिया है। मार्क्स ने अपने सांस्कृतिक अध्ययन में यही प्रमाणित करने का प्रयास किया कि निरंतर मंथर गति से प्रवहमान रहने

वाली संस्कृति के अनेकानेक घटक होते हैं और घटकों में परिवर्तन हो भी जाए तो समूची संस्कृति में बहुत लंबे समय बाद परिवर्तन दिखता है। अतः संस्कृति एक सुचिंतित आदान है जो परंपरा और आधुनिकता के साथ गतिशील रहता है, अपनी पुरातनता और नवीनता के साथ।

जैसा कहा गया कि किसी भी संस्कृति के विकास में अनेक घटक कार्य करते हैं। अनेकानेक अंग और उपांग काम करते हैं। भाषा और साहित्य भी ऐसे ही संस्कृति के विकास के उपांग है। अतः जैसे जैसे भाषा परिवर्तित होगी वह सांस्कृतिक परिवर्तन की सूचना देगी और ठीक वैसे ही परिवर्तित या विकसित होता साहित्य सांस्कृतिक परिवर्तन की सूचना देगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि साहित्य और संस्कृति आपस में अन्योन्याश्रित वैकासिक उपकरण है जो एक दूसरे को संवर्धित करते रहते हैं। अतः संस्कृति ''किसी व्यक्ति के प्रयासों का प्रतिफल नहीं है बल्कि वह सामूहिक प्रयास और प्रयत्न का परिणाम है जिसमें साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका है''। [1]

इस प्रकार, साहित्य और संस्कृति के संबंधों को देखकर कहा जा सकता है कि मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग कर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है उसी को संस्कृति कहते हैं''।[2]

इन वैचारिक स्थितियों के आलोक में यदि भारतीय संस्कृति पर बात की जाए तो यह एक सुदीर्घ प्रक्रिया का परिणाम है जिसने अनेक प्रकार की ऐतिहासिक परिस्थितियों को देखा है। तो यह कहना ठीक ही है कि ''किसी भी देश की संस्कृति अपने को धर्म, दार्शनिक विचार, कविता, साहित्य और कला आदि के रूप में अभिव्यक्त करती हैं''।[3]

अतः बहुत ही साफ है कि अगर साहित्य के रूप में संस्कृति अभिव्यक्त करती है तो साहित्यिक विकास में संस्कृति निश्चित रूप से विकसित होती है। साहित्य सत्य, न्याय और विवेक की स्थापना करता है। भारतीय संदर्भ में देखा जाए तो साहित्य की एक लंबी परंपरा है जो समय-समय पर भिन्न-भिन्न भाषिक उपादानों को अपना माध्यम बनाकर अपनी यात्रा को प्रवाहमान बनाया है। 'भारत के विचारक सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को बहुत जोर देकर स्थापित किया है'।[4]

इसी से भारतीय संस्कृति की पहचान समूचे वैश्विक परिदृश्य में अद्वितीय है। और भी एक बात है कि भारत का सांस्कृतिक विकास भौतिक स्थितियों की ओर उन्मुख न होकर परमार्थ की ओर उन्मुख है। अतः इस दीर्घ यात्रा विकास में संस्कृत साहित्य से लेकर आज तक का साहित्य उसी परमार्थ के आदर्श को सिंचित करते हुए सांस्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

इस शोध पत्र की अगली कड़ी में यह सिद्ध करने का प्रयास कर रहा हूं कि किस प्रकार साहित्य ने संस्कृति को उसके आदर्शोत्तम रूप में समृद्ध किया है। सबसे पहले वैदिक साहित्य की बात।

वैदिक साहित्य : वैदिक संस्कृति के समय में अनेक प्रयासों के द्वारा चार वेदों की रचना की गई जिसका मूल अभिप्राय ही था प्रकृति, यज्ञ और अग्नि की संस्कृति को विकसित करना। यही कारण है कि सबसे प्राचीन ऋग्वेद में पहला ही मंत्र आग्नेय (अग्नि) संस्कृति को समर्पित है-

'अग्निमीले पुरोहितः' [5]

[1] सत्यकेतु विद्यालंकार भारतीय संस्कृति का विकास, पृष्ठ संख्या 11

[2] वही, पृ.सं. 11

[3] वही, पृ.सं. 13

[4] वही, पृ.सं. 15

[5] वही, पृ.सं. 13

अग्नि ही इस समूची कायनात के मूल में है। उर्जा से ही सब कुछ संचालित है। इसीलिए कहा जाता है कि वैदिक समय के लोग अग्नि की पूजा करते थे जो आज भी हमारी शास्त्रीय और लोक परंपरा में विद्यमान है। इस साहित्य ने अग्नि संस्कृति को ना केवल प्रतिष्ठित ही किया वरन आज तक उसकी अक्षुण्ण परंपरा को बनाए रखा है। ठीक इसी प्रकार लौकिक संस्कृत साहित्य को भी देखा जा सकता है कि किस प्रकार इसने अपने समय की संस्कृति को विकसित और प्रभावित किया। लौकिक संस्कृत के दो बड़े महाकाव्यों को देखा जा सकता है।

1) **रामायण**:

आदि कवि वाल्मीकि विरचित रामायण का कार्य-कारण संबंध ही भारतीय संस्कृति के विकास, परिवर्धित और आदर्श रूप में स्थापित करने के लिए निर्मित होता है। बहेलिये (निषाद) के द्वारा क्रौंच वध पर वाल्मीकि दुखी होते हैं और उनके मन में बहेलिए के तिरस्कार के साथ ही यह सवाल आने लगा कि क्या परमात्मा द्वारा सृजित यह दृश्यगोचर संस्कृति अपने उच्चतम आदर्श की पराकाष्ठा को भूल गया है? यह विचारणा उनके मन में बार-बार आने लगी कि आखिर कोई इस प्रकार अकरूण और संवेदनहीन होकर क्रूरता की सीमा को किस प्रकार पार कर सकता है! भाषा विहीन इतने कोमल प्राणी की हत्या कोई किस प्रकार कर सकता है! यह प्रश्न वाल्मीकि के सांस्कृतिक निर्माण का ही प्रश्न था। शोक संपन्नता इतनी अधिक थी कि वह उदास मन से नारद से प्रश्न करते हैं कि मैं आखिर ऐसा क्या लिखूं कि हमारी वर्तमान संस्कृति से यह भयावह दंश समाप्त हो जाए। तब राम के विषय में लिखने का उद्यम हुआ-

इक्ष्वाकु वंश प्रभवो राजा रामो नाम जनै: श्रुता"[6]

यह राम का मर्यादा से युक्त चरित्र (आयन) महाकाव्यात्मक साहित्य सृजन के माध्यम से तत्कालीन संस्कृति का संवर्धन करना ही है। अतः यह भी सिद्ध होता है कि साहित्य की भूमिका सांस्कृतिक संवर्धन में महत्वपूर्ण होती है।

2) **महाभारत**:

यह न्याय और अन्याय, विवेक और अविवेक, धर्म और अधर्म की द्वंद्वात्मक स्थिति में निर्मित एक ऐसा महाकाव्यात्मक ग्रंथ है, जिसने न केवल अपने समय को जवाब दिया बल्कि आने वाले समय को भी रास्ता दिखाया कि अधर्म और अन्याय मनुष्यता के लिए अभिशाप है। आगे आने वाली संस्कृति के लिए यह प्रमाण बना। और व्यास ने कहा कि यह सामान्य ग्रंथ नहीं है बल्कि-

'इतिहास पुराणामुन्मेष निर्मितंच यत्'[7]

इतिहास और पुराण के उन्मेष के साथ निर्मित है जिसमें आने वाली पीढ़ियां सबक लेंगी और महान संस्कृति को उसी के अनुरूप विकसित करेंगी। तो यहां भी स्पष्ट देखा जा सकता है कि सांस्कृतिक विकास में साहित्य अपनी केंद्रीय भूमिका के साथ प्रासंगिक है।

इसी प्रकार देखा जा सकता है कि परवर्ती बौद्ध और जैन साहित्य ने भी अपने समय की संस्कृति को दुख और अज्ञान से मुक्त करके देखने का प्रयास किया। इसी के साथ एक और तथ्य की ओर संकेत कर देना आवश्यक है कि केवल साहित्य ही नहीं, भाषा भी वही भूमिका निभाती है। भाषा और साहित्य एक साथ विकसित और परिवर्तित होते हैं। जब भी साहित्य की भूमिका और उसका रूप बदलेगा, उसको संवहित करनेवाला माध्यम भी बदल जाता है। वैदिक साहित्य के समय 'वैदिक संस्कृत', लौकिक साहित्य के समय 'लौकिक संस्कृत' और बौद्ध साहित्य

[6] वाल्मीकि रामायण, पृष्ठ संख्या 53

[7] वेदव्यास, महाभारत, पृष्ठ संख्या 6,

समय 'पाली भाषा' और जैन साहित्य के समय 'प्राकृत भाषा' आदि।

3) **पाली साहित्य**:

गौतम बुद्ध की निदर्शना क्या थी कि एक ऐसे समाज और संस्कृति की स्थापना और निर्माण किया जाए जिसमें दुख न हो। तो दुख के निवारण हेतु उसके कारण को खोजा और पाया कि सम्यक ज्ञान के माध्यम से ही सुखी समाज को निर्मित किया जा सकता है। यह सम्यक ज्ञान क्या है? यही एक नई संस्कृति का आराधक तत्व है जो पाली साहित्य के माध्यम से तत्कालीन समाज को मिला।

4) प्राकृत साहित्य:

इस साहित्य का संबंध प्राकृत/जैन धर्म से है। महावीर ने जिन चार व्रतों का निर्वहन किया वह निश्चित रूप से उस समय की संस्कृति में कमतर रहे होंगे, तभी तो हिंसा न करना, सत्य संभाषण करना, चोरी नहीं करना और संचित संपत्ति न रखने का व्रत दिया। निश्चित रूप से प्राकृत साहित्य ने अपने समय की संस्कृति को संवर्धित किया है।

इसी प्रकार हिंदी साहित्य की बात की जाए तो **भक्तिकाल,** जो कि उस समय का स्वर्ण काल कहा जाता है, उसने अपने भक्ति आंदोलन के माध्यम से भारतीय संस्कृति में धर्म, न्याय, विवेक, भक्ति और सामाजिक समरसता को विकसित करने का कार्य किया। इस समय के संतकवि हों या भक्त कवि, सबने अपने-अपने तरीके से एक आदर्श संस्कृति और समाज को यूटोपिया के माध्यम से विन्यसित किया।

तुलसी ने रामराज्य जैसे आदर्श यूटोपिया को विकसित किया। एक ऐसी संस्कृति, जहां किसी से किसी को बैर और विषमता नहीं। यह एक अपूर्व संस्कृति की कल्पना थी।

रामराज बैठे त्रैलोका, हर्षित भय गए सब सोका'[8]

इसी प्रकार जायसी ने 'सिंहलगढ़' की यूटोपिया को निर्मित किया, जहां प्रेम की संस्कृति का सोपान निर्मित होता है। राजा रत्नसेन को तमाम संघर्षों के बाद प्रेम की उदात्त अवस्था की प्राप्ति होती है, तब जायसी ने कहा- 'प्रेम गगन घन उआँ'[9] प्रेम तो गगन से भी ऊंचा है यही जायसी का प्रतिफलन है।

सूर ने तो ब्रजमंडल की संस्कृति का विकास किया, जहां कृषि जीवन, ग्रामीण परिवेश, स्त्री-पुरुष, सब के सब समान धरातल पर विचरण करते हैं। यह सूर का अपने साहित्य के माध्यम से सांस्कृतिक विकास है। और अंत में सामान्य जनमानस में गाए जाने वाले और उक्ति के रूप में दोहराए जाने वाले संत कवि कबीर ने 'अमर यह देसवा' की यूटोपिया को निर्मित किया जहां ज्ञान और प्रेम की संस्कृति की स्थापना हुई-

'कबिरा या घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं'[10]

ये सभी सांस्कृतिक विकास की संकल्पनाएँ हैं, जिनको साहित्य ने विकसित किया और समान तथा राष्ट्र के भीतर अंतः स्रोतश्विनी धारा के रूप में प्रवाहित होने वाली संस्कृति को उर्जस्वित कर दिया।

इसी प्रकार जब और आगे बढ़ते हैं तो रीतिकालीन साहित्य ने स्थूल श्रृंगार और सौंदर्य की संस्कृति को विकसित किया। पूरा का पूरा समाज इसी निगाह से संचालित दिखता है। कंचन और कामिनी केंद्र में है। इसके साथ ही भारतेंदुयुगीन साहित्य में आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से नई संवेदना के साथ नवजागरण की संस्कृति को विकसित किया गया। इस साहित्य ने सामंती मानसिकता से बाहर निकलकर मनुष्य की स्वतंत्रता संवेदना और उसके अधिकारों को केंद्र में रखा। भारतेंदु ने स्त्री शिक्षा, स्वावलंबन

[8] तुलसीदास, रामचरितमानस, उत्तरकांड, श्लोक संख्या 4

[9] आचार्य शुक्ल, मलिक मोहम्मद जायसी, भूमिका, पृ. संख्या 45

[10] पारसनाथ तिवारी, कबीर ग्रंथावली, सुरतन को अंग, पद संख्या 8

और सहकारी सोच के माध्यम से भारतीय संस्कृति की विगलित धारा को परिमार्जित करने का कार्य किया। यह भारतेंदु साहित्य का सांस्कृतिक विकास और उसके बदलाव के लिए निर्मित किया गया उपक्रम था जिसमें संस्कृति से जुड़ी कोई ऐसी समस्या नहीं थी जिसकी चिंतन ना प्रस्तुत की गई हो।

तो हम लगातार यह देख रहे हैं कि साहित्य ने प्रत्येक समय की संस्कृति को विकसित करने में अपने महत्वपूर्ण भूमिका को स्थापित किया है। हिंदी साहित्य में तो तमाम कवियों की सूची विद्यमान है जिसने भारतीय संस्कृति को नए संदर्भ में प्रस्तुत करने का काम किया। छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद का समूचा रचना संसार सांस्कृतिक पुन:जागरण का संसार है। इतिहास हमेशा सांस्कृतिक विकास के लिए दृष्टि देता है। प्रसाद ने अपने समय के सांस्कृतिक उत्थान के लिए कथानकों का चयन इतिहास की महान घटनाओं से लिया, जिनसे नवीन संस्कृति का विकास किया जा सके। इसी प्रकार मैथिलीशरण गुप्त उर्मिला, जयद्रथ वध, द्वापर आदि प्रसंगों को नए संदर्भ में प्रस्तुत करके नए सांस्कृतिक वातावरण और परिवेश का निर्माण करते हैं। अभिमन्यु का चरित्र भारत के युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। वह अपने राष्ट्रीय हित के लिए अपने पिता और मामा (कृष्ण) से भी युद्ध करने के लिए प्रतिबद्धता जाहिर करता है। यही भारतीय संस्कृति में आजादी के बाद स्वाधीन भारत के युवा में वे देखना चाहते हैं। अतः यही भारतीय संस्कृति का गौरव है। यही सांस्कृतिक मूल्य है।

निष्कर्ष:

केवल भारतीय ही नहीं, किसी भी राष्ट्र की संस्कृति को विकसित करने तथा परंपरा से संबंध करने में साहित्य अपनी महत्वपूर्ण भूमिका को स्थिर करता है। संस्कृति एक ऐसी अमूर्त अंतः प्रवाही अवधारणा है, जिसमें व्यक्ति का मन विकसित होता है। साहित्य का कार्य भी यही है। साहित्य मानसिक परिवर्तन का कारण होता है। समय-समय पर साहित्य अपनी सैद्धांतिक प्रक्रिया के कारण चेतना का निर्माण करता है। संस्कृति भी व्यक्ति की चेतना का हिस्सा बन जाती है। अतः साहित्य वह महत्वपूर्ण उपादान बन जाता है जहां सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया को पूरा सहयोग आभ्यंतरिक रूप से मिलता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1) सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति का विकास, श्री सरस्वती सदन दिल्ली- 29, प्रथम संस्करण 2009
2) वाल्मीकि रामायण, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत 2075
3) वेदव्यास, महाभारत, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत 2073
4) तुलसीदास, रामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत 2065
5) आचार्य शुक्ल, मलिक मोहम्मद जायसी, नागरी प्रचारिणी सभा, 13वीं आवृत्ति।
6) पारसनाथ तिवारी, कबीर ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा।

सहायक ग्रंथ

1) हिंदी साहित्य का इतिहास डॉ नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
2) संत काव्य, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, दिल्ली
3) कबीर वचनावली, हरिऔध, वाणी प्रकाशन दिल्ली
4) भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, शिवकुमार मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली
5) अकथ कहानी प्रेम की, पुरुषोत्तम अग्रवाल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली